UGC CARE LISTED JOURNAL

ISNN: 2321-0443

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-79

जुलाई-सितंबर-2023

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

UGC CARE LISTED JOURNAL ISSN: 2321-0443

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-79

जुलाई-सितंबर-2023

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

'ज्ञान गरिमा सिंधु' मानविकी और सामाजिक विज्ञान की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य विद्यार्थियों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति है। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली- चर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश:

- लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
- लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
- लेख सरल हों जिसे विश्वविद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
- लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो।

प्रकाशन हेतु विस्तृत जानकारी आयोग की वेबसाइट http://cstt.education.gov.in/en पर उपलब्ध है ।

पत्रिका का शुल्क:	**भारतीय मुद्रा**	**विदेशी मुद्रा**
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	**Rs 14.00**	**पौंड 1.64 डॉलर 4.84**
वार्षिक चन्दा	**Rs 50.00**	**पौंड 5.83 डॉलर 18.00**
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	**Rs 8.00**	**पौंड 0.93 डॉलर 10.80**
वार्षिक चन्दा	**Rs 30.00**	**पौंड 3.50 डॉलर 2.88**

वेबसाइट : www.cstt.education.gov.in
कॉपीराइट : ©2022
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार,
पश्चिमी खंड -7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली - 110066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग,
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
टेलीफोन - (011) 20867172
फैक्स - (011) 26105211/246

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष की कलम से...

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक, तकनीकी, उच्चतर शिक्षा एवं मानविकी आदि से संबद्ध क्षेत्रों में तैयार की गई शब्दावली का समुचित प्रयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने हेतु `ज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका का प्रकाशन करता आया है। आयोग द्वारा समय-समय पर इस पत्रिका के कुछ विषय-केंद्रित विशेषांकों का प्रकाशन किया जाता रहा है। इसी श्रृंखला में पत्रिका के अंक-79 (जुलाई-सितंबर, 2023) को अपने सुधी पाठकों एवं लेखकों को उपलब्ध कराते हुए मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत अंक बहुविषयक प्रकृति का है। इस अंक में एक ओर जहाँ भारतीय संविधान, न्यायशास्त्र, प्रमुख नीतिगत विमर्श को स्थान दिया गया है, वही दूसरी ओर भारतीय ज्ञान परंपरा से संबंधित विविध लेखों का भी समावेश किया गया है। नौकरशाही में नवोन्मेष, लोकलुभावनवाद व स्वतंत्रता आंदोलन का विउपनिवेशीकरण परिप्रेक्ष्य जैसे लेख भी अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ न केवल संस्था-विशेष के ज्ञान एवं वैशिष्ट्य का परिचायक होती हैं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण नीति-निर्माण, अनुसंधानों तथा शोध-कार्यों का एक समेकित व जनोपयोगी सार्थक मंच भी प्रस्तुत करती हैं।`ज्ञान गरिमा सिंधु' का उद्देश्य मूलतः हिंदी में मानविकी व सामाजिक विज्ञान विषयक लेखन को प्रचारित-प्रसारित करना है, जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने प्रत्येक अंक में करती रही है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण व संग्रहणीय है। देश भर से विभिन्न विषयों पर चिंतन-मनन करने वाले विभिन्न मनीषियों के विविध-विषयक सारगर्भित आलेख प्रस्तुत अंक में संकलित हैं।

यह महत्वपूर्ण अंक आपको समर्पित करते हुए मैं देश के प्रतिनिधि विश्वविद्यालयों, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं अन्य संस्थानों के अध्यापकों, वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों से अपेक्षा करता हूँ कि वे आयोग के विशेषज्ञ विद्वानों के सहयोग से तैयार की गई प्रामाणिक व मानक शब्दावली के अधिकाधिक प्रयोग के माध्यम से इसे सर्वजन-सुलभ बनाने में अपना सार्थक योगदान दें। साथ ही मैं विद्वानों, शोधार्थियों, अन्य लेखकों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे इस पत्रिका के लिए आलेख लिखें। आयोग की शब्दावलियाँ https://shabd.education.gov.in/ पर खोज प्रक्रिया में उपलब्ध हैं। जहाँ से आयोग द्वारा निर्मित आधिकारिक शब्दावली को प्राप्त कर के आलेख लिखे जा सकते हैं।

प्राप्त आलेखों को सम्पादित कर प्रकाशन योग्य तैयार करने का उत्तरदायित्व डॉ.शाहजाद अहमद अंसारी ने बड़े मनोयोग से निभाया है। मैं इस पत्रिका के परामर्श एवं संपादन-समिति के प्रत्येक विशेषज्ञ तथा संपादक डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हुए इस अंक के लेखकों को भी साधुवाद देता हूँ। सुधी पाठकों के अमूल्य सुझावों एवं सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रो. गिरीश नाथ झा
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

सम्पादकीय

`ज्ञान गरिमा सिंधु' का 79 वाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह अंक स्वयं में विशिष्ट है। प्रस्तुत अंक में सामाजिक विज्ञान व मानविकी के विविध पक्षों से संबंधित आलेखों को समाहित किया गया है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का वि-उपनिवेशीकरण परिप्रेक्ष्य, लोहिया, गाँधी, विनोबा भावे आदि प्रमुख सामाजिक विचारकों के प्रमुख विचार, भारतीय संविधान, भारतीय न्यायशास्त्र, अनुसूचित जनजाति, विकसित भारत, लोकलुभावनवाद, संपोषणीयता, उपनिवेशवाद, जी-20, महिला आंदोलन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 आदि विविध विषयों पर प्रमुख लेखों का चयन प्रस्तुत अंक के लिए किया गया है। उपनिषद, भगवद्गीता तथा श्रीरामचरितमानस पर आधारित भारतीय ज्ञान परंपरापरक सारगर्भित लेखों को भी इस अंक में सम्मिलित किया गया है। भारत-जापान द्विपक्षीय समझौतों, भारतीय राजनीति में राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयाम तथा सामाजिक विज्ञानों के लिए हिंदी में तकनीकी शब्दावली से संबंधित प्रमुख लेख भी उल्लेखनीय हैं।

अध्यक्ष महोदय के निर्देशानुसार एवं उनके द्वारा 'ज्ञान गरिमा सिन्धु' के इस अंक हेतु प्राप्त आलेखों के मूल्यांकन, संयोजन एवं सम्पादन का अवसर मिला। यद्यपि अत्यल्प समय में इसके मूल्यांकन व सम्पादन का कार्य वास्तव में कठिन था, तथापि नित्य-प्रति के प्रयासों और विशेषज्ञ-समिति के सहयोग से आलेखों का मूल्यांकन, सम्पादन एवं प्रूफ-शोधन प्रारंभ हुआ। प्राप्त कुल साठ से अधिक आलेखों में से सम्पादित एवं चयनित कर इस अंक हेतु इकत्तीस आलेखों को स्थान दिया गया है, जिसे क्रमवार प्रस्तुत किया गया है ताकि विषय की समेकित समझ बन सके।

मैं सभी लेखकों एवं परामर्श- संपादन समिति के सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

मैं माननीय अध्यक्ष महोदय के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन व प्रोत्साहन से यह कार्य नियत समय पर निष्पादित हो सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत अंक पाठकों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध होगा। विद्वत समाज और सुधी पाठकों के सुझाव की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी
सहायक निदेशक (विषय),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

परामर्श एवं सम्पादन मंडल

प्रधान सम्पादक
प्रोफेसर गिरीश नाथ झा
अध्यक्ष

सम्पादक
डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी,
सहायक निदेशक (विषय)

सम्पादन समिति

प्रो. पवन कुमार शर्मा
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

प्रो. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
प्राचार्य, देशबंधु महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार झा
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. शांतेष कुमार सिंह
अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, संगठन और कूटनीति अध्ययन केंद्र,
अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. गौरव सिंह
केंद्रीय शैक्षणिक प्रौद्योगिकी संस्थान,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद,
नयी दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार तिवारी
शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रूफ़ शोधन
शाईस्ता
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1.	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और मार्क्स: वि-उपनिवेशीकरण के परिप्रेक्ष्य में	पवन कुमार शर्मा	1-18
2.	भारतीय नौकरशाही में नवोन्मेष: मिशन कर्मयोगी के विशेष परिप्रेक्ष्य में	प्रवीण कुमार झा, संगीता	19-32
3.	सामाजिक विज्ञानों के लिए हिंदी में तकनीकी शब्दावली : संदर्भ और संभावनाएँ	गिरीश्वर मिश्र, ऋषभ कुमार मिश्र	33-40
4.	भारत और कार्बन तटस्थत विकास: एक राजनीतिक और आर्थिक विश्लेषण	संजय शर्मा	41-49
5.	संविधान सभा का प्रथम सत्र एवं भाषा का प्रश्न	दिनेश कुमार गहलोत	50-55
6.	संपोषणीयता के विभिन्न आयाम : अध्येताओं की दृष्टि से	पायल रानी, चित्रा देवी	56-66
7.	स्वतंत्रता संघर्ष के समय भारत में संविधान सभा की अवधारणा का विकास	भरत देवड़ा	67-76
8.	जी-20 और भारतीय पर्यटन का विकास	मोहम्मद फैसल	77-89
9.	लोकलुभावनवाद का उदय और वैश्वीकरण के लिए उभरती चुनौतियाँ	युक्ति गुप्ता	90-96
10.	पूर्व प्राथमिक शिक्षा का मुख्यधारा में समावेशन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप	गौरव सिंह	97-105
11.	अनुसूचित जनजातियों / आदिवासियों के हितों के संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधान	विनोद कुमार	106-114
12.	भारत के संविधान में सामाजिक न्याय के प्रमुख प्रावधान : एक अवलोकन	अशोक कुमार	115-125

13.	विकसित भारत @2047: नीतियाँ व चुनौतियां	बृजेश चंद्र श्रीवास्तव, संजीत कुमार, सौरव भड़वाल	126-133
14.	सामुदायिक सहभागिता एवं राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन: चुनौतियां और संभावनाएं	शाईस्ता	134-142
15.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं के समक्ष प्रासंगिकता	प्रवीण कुमार गौतम, चन्दन सिंह, ओ०पी०बी०शुक्ला, प्रदीप कुमार सिंह	143-153
16.	भारतीय राजनीति में राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयामों का विश्लेष्णात्मक अध्ययन	निभा राठी, मनस्वी सेमवाल	154-160
17.	मार्क्स, लोहिया और गांधी	शकील हुसैन	161-172
18.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विशेष विद्यार्थी-संभावनाएं एवं चुनौतियां	राजेंद्र प्रसाद	173-182
19.	उपनिषदों एवं भगवदगीता में अधिकारों की संकल्पना: भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के विशेष संदर्भ में	रजत कोहली, मानसी त्यागी	183-192
20.	विनोबा भावे: जीवन एवं शिक्षा दर्शन	आद्या शक्ति राय	193-199
21.	उपनिवेशवाद, संस्कृति और भाषा: एक विमर्श	पतंजलि मिश्र	200-208
22.	महिला आंदोलन का वैश्विक स्वरूप	राजेन्द्र कुमार पाण्डेय	209-219
23.	जलवायु न्याय और पर्यावरणीय राजनीति	कल्पना अग्रहरि	220-231
24.	भारत में गैर सरकारी संगठन: उद्भव और विकास	नीतीश कुमार, आबिदा बानो	232-240
25.	विश्वव्यापी मंच पर भारत की उभरती हुई विदेश नीति: जी-20 की अध्यक्षता के संदर्भ में	नावेद जमाल	241-250

26.	श्रीरामचरितमानस में वर्णित गुरु तत्व की शैक्षिक विवेचना	सिम्मी गुप्ता, प्रवीण कुमार तिवारी	251-257
27.	भारतीय संविधान में वित्त प्रबंधन और राष्ट्रीय एकीकरण	विनीता राजपुरोहित	258-264
28.	उत्तराखण्ड हिमालयः प्राकृतिक आपदायें बनाम मानवकृत आपदायें	दलीपसिंह बिष्ट	265-271
29.	भारत-जापान द्विपक्षीय समझौतों का सामरिक महत्व और वर्तमान स्थिति	महेन्द्र प्रकाश	272-281
30.	भारतीय न्यायशास्त्र में अंतर्विभागीयता: संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की खोज	भरत प्रताप सिंह, चेतना चौधरी, भानु प्रताप सिंह	282-293
31.	नारदस्मृति एवं वित्तीय प्रबन्धन: प्राचीन भारतीय वित्तप्रबन्धन विधियों का उद्घाटन	सुभाष चन्द्र गोल्डन कुमार आरुषि निगम	294-300

अध्याय-30

"भारतीय न्यायशास्त्र में अंतर्विभागीयता: संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की खोज"

भरत प्रताप सिंह
सहायक आचार्य,
एस०डी०जी०आई० ग्लोबल विश्वविद्यालय, गाज़ियाबाद

चेतना चौधरी
शोध छात्रा, एस०एम०पी० राजकीय महिला महाविद्यालय, मेरठ

भानु प्रताप सिंह
सहायक आचार्य,
आई०एल०एस०आर०जी०एल.ए० विश्वविद्यालय, मथुरा

अंतर-विभागीयता, १९८० के दशक के अंत में किम्बरले क्रेंशॉ[xxxii] द्वारा गढ़ा गया एक शब्द, कानूनी ढांचे के भीतर सामाजिक पहचान और शक्ति की गतिशीलता की जटिलताओं को समझने में एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में उभरा है। भारतीय न्यायशास्त्र के संदर्भ में, अंतर्विरोध एक महत्वपूर्ण लेंस के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से विभिन्न सामाजिक पहचानों की परस्पर क्रिया और न्याय के लिए उनके निहितार्थ की जांच की जा सकती है। यह शोध पत्र भारतीय न्यायशास्त्र के भीतर सामाजिक न्याय की खोज पर प्रकाश डालता है, विशेष रूप से इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि संवैधानिक अधिकार विविध सामाजिक पहचानों के साथ कैसे जुड़ते हैं।
शास्त्रीय राजनीतिक दार्शनिक प्लेटो[xxxii] और अरस्तू[xxxii], इसके अलावा नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन[xxxii] और एक प्रमुख राजनीतिक दार्शनिक जॉन रॉल्स[xxxii] ने सामाजिक न्याय पर चर्चा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सेन का क्षमता दृष्टिकोण कल्याण की बहुआयामी प्रकृति को स्वीकार करते हुए, लोगों की मूल्यवान जीवन जीने की क्षमताओं का विस्तार करने के महत्व पर जोर देता है। दूसरी ओर, रॉल्स ने न्याय के सिद्धांत को निष्पक्षता के रूप में प्रस्तावित किया, उन सिद्धांतों की वकालत की जिन पर व्यक्ति निष्पक्षता की शर्तों के तहत सहमत होंगे। दोनों विद्वान समाज के भीतर व्यक्तियों की विविध आवश्यकताओं और परिस्थितियों को संबोधित करने के लिए न्याय की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं। भारतीय संदर्भ में, संविधान सामाजिक न्याय के एक प्रकाशस्तंभ के रूप में खड़ा है, जो समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के सिद्धांतों को स्थापित करता है।
शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य देखभाल और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक पहुंच सहित भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अंतर्संबंध की जटिलताएं स्पष्ट हैं।[xxxii] भेदभाव और हाशियाकरण कई अक्षों के साथ प्रतिच्छेद करते हैं, जिससे कुछ समूहों के लिए नुकसान बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए, दलित महिलाओं को न केवल उनके लिंग के आधार पर बल्कि उनकी जाति के आधार पर भी भेदभाव का अनुभव हो सकता है, जिससे अवसरों और संसाधनों तक पहुँचने में प्रणालीगत बाधाएँ पैदा हो सकती हैं। इस पृष्ठभूमि में, भारतीय न्यायशास्त्र अन्याय के परस्पर विरोधी रूपों को संबोधित करने के लिए संवैधानिक अधिकारों की व्याख्या और उन्हें लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। न्यायिक हस्तक्षेप, जैसे सकारात्मक कार्रवाई नीतियां और मौलिक अधिकारों की प्रगतिशील व्याख्याएं, प्रणालीगत भेदभाव के प्रभावों को कम करने का प्रयास करती हैं। हालाँकि, कानूनी प्रावधानों को ज़मीनी स्तर पर

सार्थक बदलाव में बदलने में चुनौतियाँ बनी हुई हैं, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों में जहाँ उत्पीड़न के परस्पर विरोधी रूप सबसे तीव्र हैं।

इस संदर्भ में, भारतीय न्यायशास्त्र में अंतर्विरोध की खोज अनिवार्य हो जाती है। न्यायिक निर्णयों, विधायी उपायों और नीतिगत हस्तक्षेपों की आलोचनात्मक जांच करके, हम बेहतर ढंग से समझ सकते हैं कि व्यवहार में सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को कैसे क्रियान्वित किया जाता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय कानूनी ढांचे के भीतर सामाजिक पहचान और न्याय की जटिलताओं पर प्रकाश डालकर इस चल रही बातचीत में योगदान देना है।

सामाजिक न्याय क्या है

सामाजिक न्याय की खोज में असमानताओं, भेदभाव और उत्पीड़न को समझने और संबोधित करने के लिए सामाजिक संरचनाओं, प्रणालियों और प्रथाओं की व्यापक जांच शामिल है। इसके मूल में, सामाजिक न्याय समाज के सभी सदस्यों, विशेष रूप से हाशिए पर या वंचित लोगों के लिए निष्पक्षता, समानता और समावेशिता प्राप्त करना चाहता है। इसमें मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, जिनमें आर्थिक असमानता, नस्लीय भेदभाव, लैंगिक असमानता और शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और कानूनी अधिकारों तक पहुंच शामिल है, लेकिन यह इन्हीं तक सीमित नहीं है। सामाजिक न्याय के लिए शक्ति की गतिशीलता, विशेषाधिकार और अंतर्विरोध के आलोचनात्मक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। जाति, वर्ग, लिंग, कामुकता और क्षमता जैसी सामाजिक पहचान की परस्पर जुड़ी प्रकृति। इसमें अन्यायपूर्ण प्रणालियों को चुनौती देना और समानता, विविधता और मानवाधिकारों को बढ़ावा देने वाली नीतियों और प्रथाओं की वकालत करना शामिल है। इसमें प्रणालीगत अन्याय को दूर करने और सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने के लिए जमीनी स्तर पर सक्रियता, नीति वकालत, सामुदायिक आयोजन और कानूनी सुधार के प्रयास शामिल हो सकते हैं। सामाजिक न्याय की खोज में अन्याय की ऐतिहासिक और समकालीन अभिव्यक्तियों के साथ-साथ असमानता को कायम रखने वाले अंतर्निहित संरचनात्मक कारकों की जांच करना शामिल है। इसके लिए हाशिए पर रहने वाले समुदायों की आवाज़ और अनुभवों को पहचानने और बढ़ाने की आवश्यकता है, क्योंकि वे अक्सर सामाजिक अन्याय से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। इसमें उत्पीड़न से सीधे प्रभावित लोगों के दृष्टिकोण को केंद्रित करने के लिए संवाद, कहानी कहने और भागीदारीपूर्ण अनुसंधान विधियों में संलग्न होना शामिल हो सकता है। इसके अलावा, सामाजिक न्याय की खोज में अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज बनाने के लिए सहानुभूति, एकजुटता और सामूहिक कार्रवाई को बढ़ावा देना शामिल है। इसके लिए व्यक्तियों और संस्थानों को उत्पीड़न की प्रणालियों को कायम रखने या चुनौती देने में अपनी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों पर विचार करने की आवश्यकता है। जागरूकता, शिक्षा और वकालत को बढ़ावा देकर, सामाजिक न्याय की खोज व्यक्तिगत, समुदाय और सामाजिक स्तरों पर परिवर्तनकारी परिवर्तन को उत्प्रेरित कर सकती है, जिससे एक अधिक समावेशी और दयालु दुनिया बन सकती है जहां हर किसी को पनपने का अवसर मिलता है।

सामाजिक न्याय और व्यवस्थित भेदभाव

सामाजिक न्याय और प्रणालीगत भेदभाव आपस में जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं जो समाज के भीतर शक्ति, संसाधनों और अवसरों के असमान वितरण को दर्शाती हैं। प्रणालीगत भेदभाव पूर्वाग्रह और पूर्वाग्रह के संस्थागत पैटर्न को संदर्भित करता है जो कुछ समूहों को उनकी जाति, जातीयता, लिंग, यौन अभिविन्यास, सामाजिक आर्थिक स्थिति या अन्य सामाजिक पहचान के आधार पर नुकसान पहुंचाता है। ये भेदभावपूर्ण प्रथाएं समाज की संरचनाओं और

नीतियों के भीतर अंतर्निहित हैं, जो असमानता और हाशिए पर बनी हुई हैं। दूसरी ओर, सामाजिक न्याय सभी व्यक्तियों और समूहों के लिए समानता, निष्पक्षता और समावेशन की खोज है, विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो ऐतिहासिक रूप से उत्पीड़ित या हाशिए पर रहे हैं। इसका उद्देश्य अधिकारों, संसाधनों और अवसरों तक समान पहुंच को बढ़ावा देकर विशेषाधिकार और उत्पीड़न की प्रणालियों को चुनौती देना और नष्ट करना है। प्रणालीगत भेदभाव संस्थागत नीतियों, सांस्कृतिक मानदंडों और पारस्परिक संबंधों सहित विभिन्न तंत्रों के माध्यम से संचालित होता है। उदाहरण के लिए, नियुक्ति और रोजगार में भेदभावपूर्ण प्रथाएं कुछ समूहों के लिए उपलब्ध अवसरों को सीमित कर सकती हैं, जबकि मीडिया और शिक्षा में पक्षपातपूर्ण प्रतिनिधित्व हानिकारक रूढ़िवादिता और आख्यानों को कायम रख सकता है। इसके अतिरिक्त, स्वास्थ्य देखभाल, आवास और शिक्षा तक असमान पहुंच असमानताओं को और बढ़ा देती है और नुकसान के चक्र को कायम रखती है। प्रणालीगत भेदभाव को संबोधित करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जिसमें व्यक्तिगत और सामूहिक कार्रवाई दोनों शामिल हों। इसमें नीतिगत सुधारों की वकालत करना, विविधता और समावेशन पहल को बढ़ावा देना और समाज के सभी स्तरों पर भेदभावपूर्ण प्रथाओं और दृष्टिकोणों को चुनौती देना शामिल है। इसमें भेदभाव से सबसे अधिक प्रभावित लोगों की आवाज़ और अनुभवों को केंद्रित करने और अधिक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण प्रणाली बनाने के लिए सहयोगात्मक रूप से काम करने की भी आवश्यकता है। सामाजिक न्याय प्रयासों का उद्देश्य भेदभाव और असमानता के मूल कारणों को चुनौती देकर प्रणालीगत परिवर्तन लाना है। इसमें विधायी सुधारों की वकालत करना, जमीनी स्तर के आंदोलनों का समर्थन करना और भेदभाव के प्रभावों के बारे में शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा देना शामिल हो सकता है। प्रणालीगत भेदभाव को संबोधित करके और सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाकर, समाज अधिक समावेशी और न्यायसंगत वातावरण बना सकते हैं जहां सभी व्यक्ति फलने-फूलने और नागरिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम हों।

न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव[xxxii]

न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव उनके दार्शनिक संवाद, "द रिपब्लिक" में जटिल रूप से बुना गया है, जहां वह आदर्श राज्य और उसके भीतर न्याय की अवधारणा पर प्रकाश डालते हैं। प्लेटो के अनुसार, न्याय केवल गलत काम की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि आत्मा और राज्य की सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था है, जहां प्रत्येक भाग कारण के अनुसार अपनी निर्दिष्ट भूमिका को पूरा करता है। न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव त्रिपक्षीय आत्मा के विचार के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसमें कारण (तर्कसंगत भाग), आत्मा (उत्साही भाग), और भूख (आकर्षक भाग) शामिल है। उनका तर्क है कि एक न्यायपूर्ण व्यक्ति वह होता है जिसमें तर्क आत्मा और भूख पर शासन करता है, जिसमें प्रत्येक भाग सामंजस्यपूर्ण ढंग से अपना कार्य करता है। इसी प्रकार, आदर्श अवस्था में, न्याय तब मौजूद होता है जब शासक (दार्शनिक-राजा) ज्ञान और ज्ञान के साथ शासन करते हैं, सहायक (योद्धा) साहस और सम्मान के साथ बचाव करते हैं, और निर्माता (श्रमिक) संयम और संयम के साथ समाज की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके अलावा, प्लेटो ने "संरक्षकता" या "कुलीन झूठ" की अवधारणा का परिचय दिया है, जहां व्यक्तियों को उनकी जन्मजात क्षमताओं और योग्यताओं के आधार पर समाज के भीतर भूमिकाएं सौंपी जाती हैं। यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्राकृतिक प्रतिभा के अनुसार सामान्य भलाई में योगदान देता है, जिससे राज्य के भीतर सद्भाव और स्थिरता को बढ़ावा मिलता है। न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव शिक्षा और संस्कृति के दायरे तक भी

फैला हुआ है, जिसमें छोटी उम्र से ही सद्गुण और ज्ञान विकसित करने के महत्व पर जोर दिया गया है। वह एक कठोर शैक्षिक प्रणाली की वकालत करते हैं जो बौद्धिक और नैतिक उत्कृष्टता को बढ़ावा देती है, व्यक्तियों को राज्य के संरक्षक के रूप में अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार करती है। कुल मिलाकर, न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव इस विश्वास में निहित है कि एक सुव्यवस्थित समाज वह है जहां तर्क आधार इच्छाओं पर शासन करता है, जहां व्यक्ति अपनी निर्दिष्ट भूमिकाओं को ज्ञान और सद्गुण के साथ पूरा करते हैं, और जहां शिक्षा और संस्कृति सामंजस्यपूर्ण जीवन के लिए आवश्यक आदर्श गुणों को विकसित करती है।

न्याय के लिए अरस्तू का प्रस्ताव[xxxii]

न्याय के लिए अरस्तू का प्रस्ताव, जैसा कि उनके मौलिक कार्य "निकोमैचियन एथिक्स" में उल्लिखित है, नैतिकता, राजनीति और मानव स्वभाव की उनकी समझ में गहराई से निहित है। प्लेटो के विपरीत, जिन्होंने आदर्श राज्य पर ध्यान केंद्रित किया, न्याय के लिए अरस्तू का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक और मानव समाज की वास्तविकताओं पर आधारित है। अरस्तू के लिए, न्याय एक प्रमुख गुण है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उनका हक देना शामिल है। वह न्याय के दो मुख्य प्रकारों के बीच अंतर करता है: वितरणात्मक न्याय और सुधारात्मक (या सुधारात्मक) न्याय। अरस्तू के अनुसार, वितरणात्मक न्याय का संबंध समाज के सदस्यों के बीच वस्तुओं, सम्मानों और अवसरों के उचित वितरण से है। अरस्तू का प्रस्ताव है कि वितरणात्मक न्याय योग्यता के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए, जहां व्यक्तियों को उनके गुण, योग्यता या समाज में योगदान के अनुपात में लाभ मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग अधिक मेहनत करते हैं या अधिक प्रतिभा रखते हैं उन्हें समाज के सामान और सम्मान का अधिक हिस्सा मिलना चाहिए। दूसरी ओर, सुधारात्मक न्याय, गलतियों को सुधारने और व्यक्तियों के बीच संबंधों में संतुलन बहाल करने से संबंधित है। इसमें विवादों का समाधान और कानूनी निर्णयों का प्रशासन शामिल है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार किया जाए और अन्याय का निवारण किया जाए। अरस्तू सुधारात्मक न्याय में आनुपातिकता के महत्व पर जोर देता है, जहां सजा किए गए अपराध के समानुपाती होनी चाहिए। अरस्तू ने "प्राकृतिक न्याय" की अवधारणा का भी परिचय दिया, जिसके बारे में उनका तर्क है कि यह सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित है जो मानव स्वभाव में निहित हैं। प्राकृतिक न्याय सकारात्मक कानूनों और रीति-रिवाजों से परे है, एक नैतिक दिशा सूचक यंत्र के रूप में कार्य करता है जो सामान्य भलाई की प्राप्ति के लिए मानव आचरण का मार्गदर्शन करता है। कुल मिलाकर, न्याय के लिए अरस्तू का प्रस्ताव मानवीय रिश्तों और सामाजिक संस्थानों में निष्पक्षता, आनुपातिकता और सद्गुणों की खेती के महत्व पर जोर देता है। उनका नैतिक ढांचा न्याय की प्रकृति और सामंजस्यपूर्ण और समृद्ध समुदायों को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

अमर्त्य सेन का न्याय का विचार[xxxii]

अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन न्याय पर एक विशिष्ट और प्रभावशाली दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं जो पारंपरिक सिद्धांतों से भिन्न है। सेन के न्याय के विचार के केंद्र में "क्षमताओं" या "क्षमताओं के दृष्टिकोण" की अवधारणा है, जिसे उन्होंने अपने मौलिक कार्य "स्वतंत्रता के रूप में विकास" में व्यक्त किया है।" सेन के अनुसार, न्याय को केवल संसाधनों या धन के वितरण पर केंद्रित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसके बजाय व्यक्तियों की क्षमताओं के विस्तार को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि वे जीवन जी सकें जिसे वे महत्व देते हैं। क्षमताएं उन विभिन्न

अवसरों और स्वतंत्रताओं को संदर्भित करती हैं जो लोगों को अपने लक्ष्यों का पीछा करने और अपनी क्षमता को पूरा करने के लिए होती हैं। इन क्षमताओं में न केवल भौतिक संसाधन बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक समावेशन जैसे कारक भी शामिल हैं। सेन का तर्क है कि केवल आय या उपयोगिता के आधार पर न्याय का मूल्यांकन मानव कल्याण की बहुआयामी प्रकृति को नजरअंदाज करता है और व्यक्तियों की विविध और जटिल जरूरतों को पकड़ने में विफल रहता है। इसके बजाय, वह एक अधिक व्यापक दृष्टिकोण की वकालत करते हैं जो लोगों की वास्तविक स्वतंत्रता और उनके लिए उपलब्ध वास्तविक अवसरों का आकलन करता है। सेन के ढांचे में, न्याय में उन बाधाओं को दूर करना शामिल है जो व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं का प्रयोग करने से रोकती हैं और अपने स्वयं के मूल्यों और प्राथमिकताओं के अनुसार चुनने और कार्य करने की उनकी स्वतंत्रता को बढ़ाती हैं। इसके लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं तक पहुंच में असमानताओं को संबोधित करने के साथ-साथ हाशिए पर रहने वाले समूहों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने के लिए सशक्त बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा, सेन न्याय को बढ़ावा देने वाली नीतियों और संस्थानों को आकार देने में लोकतांत्रिक विचार-विमर्श और सार्वजनिक तर्क के महत्व पर जोर देते हैं। उनका तर्क है कि व्यक्तियों और समुदायों की विविध आवश्यकताओं और चिंताओं की पहचान करने और उन्हें संबोधित करने के लिए एक समावेशी और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक प्रवचन को बढ़ावा देना आवश्यक है। कुल मिलाकर, सेन का न्याय का विचार सामाजिक और आर्थिक विकास के अंतिम लक्ष्य के रूप में मानवीय क्षमताओं और स्वतंत्रता में वृद्धि को प्राथमिकता देता है। आय या उपयोगिता के संकीर्ण उपायों से परे फोकस को व्यापक बनाकर, सेन की क्षमताओं का दृष्टिकोण न्याय की अधिक समग्र और सूक्ष्म समझ प्रदान करता है जो मानव अस्तित्व की जटिलताओं के साथ प्रतिध्वनित होता है।

जॉन रॉल्स का न्याय का सिद्धांत[xxxii]

२० वीं शताब्दी के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दार्शनिकों में से एक जॉन रॉल्स ने अपने मौलिक कार्य "ए थ्योरी ऑफ जस्टिस" में न्याय के अपने सिद्धांत को प्रस्तुत किया।" रॉल्स का सिद्धांत, जिसे "निष्पक्षता के रूप में न्याय" के रूप में जाना जाता है, न्याय के सिद्धांतों को स्थापित करने का प्रयास करता है जो तर्कसंगत और निष्पक्ष दोनों हैं, जो समाज के भीतर सामाजिक वस्तुओं और अवसरों के उचित वितरण के लिए आधार प्रदान करते हैं। रॉल्स के सिद्धांत के मूल में मूल स्थिति का विचार है, एक काल्पनिक परिदृश्य जिसमें व्यक्तियों को "अज्ञानता के पर्दे" के पीछे रखा जाता है।" इस स्थिति में, व्यक्ति अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति, प्रतिभा और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं से अनजान होते हैं। अज्ञानता की इस स्थिति से, व्यक्तियों को न्याय के सिद्धांतों सहित समाज की बुनियादी संरचना को डिजाइन करने का काम सौंपा जाता है। रॉल्स का तर्क है कि मूल स्थिति में तर्कसंगत व्यक्ति न्याय के दो सिद्धांतों का चयन करेंगे। पहला सिद्धांत समान बुनियादी स्वतंत्रता का सिद्धांत है, जो समाज के सभी सदस्यों के लिए समान अधिकारों और स्वतंत्रता की गारंटी देता है। दूसरा सिद्धांत अंतर सिद्धांत है, जो सामाजिक और आर्थिक असमानताओं की अनुमति केवल तभी देता है जब वे समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त सदस्यों को लाभान्वित करते हैं। रॉल्स का सिद्धांत व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा और अवसर की समानता को बढ़ावा देने को प्राथमिकता देता है। व्यक्तियों को अज्ञानता के पर्दे के पीछे रखकर, रॉल्स का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि न्याय के सिद्धांतों को निष्पक्ष रूप से और बिना किसी पूर्वाग्रह के चुना जाए, जिससे समाज के सभी सदस्यों के लिए निष्पक्ष और न्यायसंगत परिणाम प्राप्त हों। इसके अलावा, रॉल्स "मैक्सिमिन" सिद्धांत के महत्व पर जोर देते हैं, जो

निर्णय निर्माताओं को समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त सदस्यों के कल्याण को अधिकतम करने की सलाह देता है। यह सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करने और सबसे कमजोर व्यक्तियों की भलाई को प्राथमिकता देने के लिए रॉल्स की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। कुल मिलाकर, रॉल्स का न्याय सिद्धांत सामाजिक संस्थानों और नीतियों की निष्पक्षता के मूल्यांकन के लिए एक कठोर रूपरेखा प्रदान करता है। उन सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित करके जिन्हें तर्कसंगत व्यक्ति एक काल्पनिक मूल स्थिति में चुनेंगे, रॉल्स एक न्यायसंगत और न्यायसंगत समाज के लिए एक आधार स्थापित करना चाहते हैं, जो समान अधिकारों, अवसरों और सबसे कम सुविधा प्राप्त लोगों के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता की विशेषता है।

भारतीय संविधान अनुच्छेद 14, 15 और 16 एवं सामाजिक न्याय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14[xxxii], 15[xxxii] और 16[xxxii] नागरिकों के बीच समानता और गैर-भेदभाव सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण हैं। ये लेख सामूहिक रूप से एक समावेशी और समतावादी समाज को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारतीय कानूनी ढांचे का आधार बनते हैं।

अनुच्छेद १४ भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण की गारंटी देता है। यह धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय की नींव रखता है कि सभी नागरिकों के साथ राज्य द्वारा समान व्यवहार किया जाए और उनकी पृष्ठभूमि या स्थिति की परवाह किए बिना न्याय तक समान पहुंच हो।

अनुच्छेद 15 सार्वजनिक स्थानों, रोजगार, या शैक्षणिक संस्थानों तक पहुंच के मामलों में राज्य को धर्म, जाति, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ भेदभाव करने से रोककर समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों को और मजबूत करता है। राज्य द्वारा वित्त पोषित या रखरखाव किया जाता है। यह लेख न केवल सभी नागरिकों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है बल्कि पहचान चिह्नों के आधार पर ऐतिहासिक अन्याय और प्रणालीगत भेदभाव को भी संबोधित करने का प्रयास करता है।

अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता की गारंटी देकर पूर्ववर्ती लेखों का पूरक है। यह राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में भर्ती में धर्म, जाति, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान, निवास, या उनमें से किसी के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में सहायक है कि सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों तक पहुंच पहचान के मनमाने विचारों के बजाय योग्यता पर आधारित है। संदर्भ में, ये लेख सामूहिक रूप से अपने नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करके और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता, गैर-भेदभाव और समावेशिता को बढ़ावा देकर सामाजिक न्याय के प्रति भारतीय राज्य की प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं। वे ऐतिहासिक अन्यायों को संबोधित करने, जाति-आधारित भेदभाव का मुकाबला करने और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। इसके अलावा, इन संवैधानिक प्रावधानों की न्यायपालिका द्वारा ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से व्याख्या और विस्तार किया गया है, जिससे सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाने में उनका महत्व और मजबूत हुआ है। भारतीय संविधान, अनुच्छेद १४, १५ और १६ में निहित समानता और गैर-भेदभाव पर जोर देने के साथ,

सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और अपने सभी नागरिकों के लिए एक समान समाज को बढ़ावा देने के लिए एक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य करना जारी रखता है।

भारतीय संविधान अनुच्छेद 38, 39(a) और 46 एवं सामाजिक न्याय

अनुच्छेद 38[xxxii] न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पर आधारित सामाजिक व्यवस्था हासिल करके लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने और आय, स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को कम करने के राज्य के कर्तव्य पर जोर देता है। यह प्रावधान एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज बनाने के भारतीय संविधान के व्यापक उद्देश्य को रेखांकित करता है जहां सभी नागरिकों को अवसरों और संसाधनों तक समान पहुंच प्राप्त हो। अनुच्छेद 38 समानता, समावेशिता और एकजुटता के सिद्धांतों पर स्थापित एक सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है, जिससे राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए आधार तैयार किया जा सके।

अनुच्छेद ३९ (क)[xxxii] यह सुनिश्चित करने की दिशा में अपनी नीति को निर्देशित करके सामाजिक न्याय और समानता को सुरक्षित करने के लिए राज्य की जिम्मेदारी पर जोर देता है कि भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण आम अच्छे की सर्वोत्तम सेवा के लिए वितरित किया जाता है। यह प्रावधान सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर करने और समाज के सभी वर्गों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए संसाधनों के समान वितरण के महत्व को रेखांकित करता है। भौतिक संसाधनों के समान वितरण की वकालत करके, अनुच्छेद ३९ (ए) गरीबी को कम करने, असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना चाहता है।

अनुच्छेद ४६[xxxii] राज्य को समाज के कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और उन्हें सामाजिक अन्याय और शोषण से बचाने का आदेश देता है। यह प्रावधान हाशिए पर रहने वाले समुदायों के उत्थान और राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में उनके समावेश को सुनिश्चित करने के लिए भारतीय संविधान की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। कमजोर समूहों के शैक्षिक और आर्थिक सशक्तिकरण को प्राथमिकता देकर, अनुच्छेद 46 का उद्देश्य एससी, एसटी और अन्य हाशिए पर रहने वाले समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले ऐतिहासिक अन्याय और प्रणालीगत भेदभाव को संबोधित करना है।

संक्षेप में, भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३८, ३९ (ए), और ४६ सामूहिक रूप से संसाधनों के समान वितरण, हाशिए पर रहने वाले समूहों की सुरक्षा और सामाजिक-आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने की वकालत करके सामाजिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों को मूर्त रूप देते हैं। ये प्रावधान सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और सभी नागरिकों, विशेष रूप से ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों से संबंधित लोगों के कल्याण को आगे बढ़ाने के लिए राज्य की प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं।

भारत में ऐतिहासिक न्यायिक मामले

भारत में कई ऐतिहासिक न्यायिक मामलों ने सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को बरकरार रखा है और हाशिए के समुदायों के अधिकारों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ प्रसिद्ध मामलों में शामिल हैं::

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)[xxxii]: यह मामला "बुनियादी संरचना सिद्धांत" की स्थापना के लिए उल्लेखनीय है, जो भारतीय संसद की संशोधन शक्ति को सीमित करता है। फैसले ने संविधान की

सर्वोच्चता की पुष्टि की और सामाजिक न्याय और समानता सुनिश्चित करते हुए मौलिक अधिकारों की रक्षा की।

2. इंद्र साहनी बनाम भारत संघ (1992)[xxxii]: आमतौर पर "मंडल आयोग मामले" के रूप में जाना जाता है, इस फैसले ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक रोजगार में सीटों के आरक्षण को बरकरार रखा। इसने सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के उत्थान के लिए सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांत को मजबूत किया।
3. विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (१९९७)[xxxii]: इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल में महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए। फैसले ने महिलाओं के समानता, सम्मान और सुरक्षित कामकाजी माहौल के अधिकारों को मान्यता दी, जिससे सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता को बढ़ावा मिला।
4. नवतेज सिंह जौहर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (२०१८)[xxxii]: इस ऐतिहासिक मामले ने भारतीय दंड संहिता की धारा ३७७ को समाप्त करके वयस्कों के बीच सहमति से समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया। निर्णय ने LGBTQ+ व्यक्तियों के समानता, गैर-भेदभाव और गरिमा के अधिकारों को बरकरार रखा, जो सामाजिक न्याय और समावेशन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।
5. शाह बानो बेगम बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (१९८५)[xxxii]: इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने तलाक के बाद पति से गुजारा भत्ता मांगने वाली मुस्लिम महिला शाह बानो के पक्ष में फैसला सुनाया। फैसले ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत महिलाओं के भरण-पोषण के अधिकारों की पुष्टि की, जिससे मुस्लिम समुदाय के भीतर सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता सुनिश्चित हुई।

ये मामले भारत के कानूनी इतिहास में महत्वपूर्ण क्षणों का प्रतिनिधित्व करते हैं जहां न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों के सिद्धांतों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने फैसलों के माध्यम से, अदालतों ने प्रणालीगत अन्याय को संबोधित करने, समावेशिता को बढ़ावा देने और समाज में हाशिए पर और कमजोर समूहों के अधिकारों को आगे बढ़ाने में योगदान दिया है।

भारतीय साहित्य में सामाजिक न्याय

चतुर्वर्ण्यं म्या सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारम्पी माविदध्यकर्तारमव्ययं। [xxxii]

भगवद गीता (4।13) में, भगवान कृष्ण गुणों (गुण) और कार्यों (कर्म) द्वारा चित्रित चार वर्णों या सामाजिक वर्गों के निर्माण की व्याख्या करते हैं। दैवीय ज्ञान द्वारा परिकल्पित इस प्रणाली को व्यक्तियों को उनके अंतर्निहित गुणों और जिम्मेदारियों के अनुकूल भूमिकाएँ सौंपकर सामाजिक सद्भाव और संतुलन को बढ़ावा देने के लिए डिज़ाइन किया गया था। हालाँकि, जोर जन्म पर नहीं बल्कि किसी व्यक्ति के चरित्र और कार्यों पर है। यह धारणा पूरी तरह से सामाजिक स्थिति पर आधारित पारंपरिक स्तरीकरण को चुनौती देती है, एक गुणात्मक दृष्टिकोण की वकालत करती है जहां किसी की स्थिति विरासत में मिले विशेषाधिकार के बजाय व्यक्तिगत विशेषताओं और कार्यों के माध्यम से अर्जित की जाती है।

सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से, यह कविता जन्म या सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे मनमाने कारकों के बजाय योग्यता के आधार पर न्यायसंगत अवसरों और मान्यता के महत्व को रेखांकित करती है। यह एक ऐसे समाज को बढ़ावा देता

है जहां व्यक्तियों को उनके वंश या जाति के बजाय उनके योगदान और क्षमताओं के लिए महत्व दिया जाता है। एक ऐसी प्रणाली की वकालत करके जहां हर किसी को अपनी पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना अपनी क्षमता को पूरा करने का अवसर मिले, यह कविता सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप है, जिसमें समाज के सभी सदस्यों के लिए निष्पक्षता, समानता और अवसर पर जोर दिया गया है।

ॐ सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निराम्याः । सर्वे भद्रानि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभागभवेत् ।[xxxii]

यह संस्कृत श्लोक, जिसे आमतौर पर शांति मंत्र के रूप में जाना जाता है, सार्वभौमिक कल्याण और समृद्धि के लिए सामूहिक आकांक्षा व्यक्त करके सामाजिक न्याय के सार को समाहित करता है। यह एक ऐसे दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है जहां सभी व्यक्ति पीड़ा और प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाए जाने के साथ-साथ खुशी, अच्छे स्वास्थ्य और शुभता का अनुभव करते हैं। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, यह मंत्र समानता, समावेशिता और करुणा के मूलभूत सिद्धांतों पर जोर देता है।

वाक्यांश "सर्वे भवंतु सुखिनः" समावेशी समृद्धि के सिद्धांत का प्रतीक है, जो सभी की खुशी और भलाई की वकालत करता है। यह इस विचार को दर्शाता है कि सामाजिक न्याय में संसाधनों, अवसरों और लाभों का समान वितरण शामिल है, यह सुनिश्चित करते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति को, उनकी पृष्ठभूमि या परिस्थिति की परवाह किए बिना, एक पूर्ण और समृद्ध जीवन जीने का अवसर मिले।

इसी प्रकार, "सर्वे संतु निरामयाह" सार्वभौमिक स्वास्थ्य और कल्याण के महत्व को रेखांकित करता है। सामाजिक न्याय के लिए समाज के सभी सदस्यों के लिए बिना किसी भेदभाव या बहिष्कार के स्वास्थ्य देखभाल, स्वच्छता और अन्य आवश्यक सेवाओं तक पहुंच की आवश्यकता होती है। यह उन नीतियों और पहलों की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है जो शारीरिक और मानसिक कल्याण को बढ़ावा देते हैं, स्वास्थ्य असमानताओं को संबोधित करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी पीछे न छूटे।

इसके अलावा, "सर्वे भद्रानी पश्यंतु" सामूहिक कल्याण और समाज के उत्थान की वकालत करते हैं। यह एकजुटता और सहानुभूति की भावना का प्रतीक है, जो व्यक्तियों को सक्रिय रूप से दूसरों के कल्याण की तलाश करने और एक न्यायपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण समाज बनाने की दिशा में काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

अंत में, "मा कश्चित दुहखभगभवेत" पीड़ा को कम करने और कठिनाई को कम करने की अनिवार्यता पर जोर देती है। यह गरीबी, असमानता और अन्याय को खत्म करने का प्रयास करके सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है, जिससे एक ऐसी दुनिया का निर्माण होता है जहां हर कोई सम्मान, सुरक्षा और खुशी के साथ रह सकता है।

सर्वेशां स्वस्तिर्भावतु । सर्वेशां शनतिर्भावतु । सर्वेशं पूर्वंभवतु । सर्वेशं मङ्गलंभवतु ।[xxxii]

यह संस्कृत श्लोक सार्वभौमिक कल्याण, शांति, पूर्ति और शुभता के लिए आशीर्वाद का आह्वान करके सामाजिक न्याय के सार को समाहित करता है। यह एक ऐसे समाज की आकांक्षात्मक दृष्टि को दर्शाता है जहां प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति, पहचान या पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना सद्भाव, शांति और समृद्धि का अनुभव करता है।

"सर्वेशम स्वस्तिर्भावतु" सभी के स्वास्थ्य और कल्याण की इच्छा को व्यक्त करता है। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, यह समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए स्वास्थ्य देखभाल, पोषण और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं तक पहुंच सुनिश्चित करने के महत्व पर जोर देता है, भले ही उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति या परिस्थितियाँ कुछ भी हों।

"सर्वेशं शांतिरभावतु" सभी के लिए शांति और शांति का आह्वान करता है। सामाजिक न्याय में विविध समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, आपसी सम्मान और सद्भाव को बढ़ावा देना, एक ऐसे वातावरण को बढ़ावा देना शामिल है जहां संघर्षों को शांतिपूर्वक हल किया जाता है और सभी व्यक्ति सुरक्षित महसूस करते हैं।

"सर्वेशं पूर्णम्भावतु" सभी के लिए तृप्ति और प्रचुरता चाहता है। सामाजिक न्याय का यह पहलू संसाधनों, अवसरों और लाभों के समान वितरण की आवश्यकता को रेखांकित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण और सम्मानजनक जीवन जीने के साधनों से पीछे न रहे या वंचित न रहे।

"सर्वेशम मंगलमभवतु" सभी के लिए शुभता और आशीर्वाद का आह्वान करता है। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, यह समाज के सभी सदस्यों के लिए सकारात्मक परिणामों, समृद्धि और खुशी की सामूहिक आकांक्षा को दर्शाता है, जो समावेशिता, करुणा और एकजुटता के लोकाचार को दर्शाता है।

निष्कर्ष

संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से भारतीय न्यायशास्त्र में अंतरसंबंध की खोज ने भारत में सामाजिक न्याय की गतिशीलता में गहन अंतर्दृष्टि का खुलासा किया है। संवैधानिक ढांचे में तल्लीन होकर और न्यायिक निर्णयों और प्राचीन भारतीय साहित्य से प्रेरणा लेकर, हमने सामाजिक न्याय की बहुमुखी प्रकृति और भारतीय समाज के मूलभूत सिद्धांतों के साथ इसके गहरे संबंध को देखा है।

भारतीय संविधान, अपनी दूरदर्शी प्रस्तावना और प्रगतिशील प्रावधानों के साथ, भारत में सामाजिक न्याय के आधार के रूप में कार्य करता है। १४, १५, १६, ३९ (ए), ४६, और ३८ जैसे अनुच्छेद समानता, न्याय और समावेशन को बढ़ावा देने के लिए कानूनी ढांचा प्रदान करते हैं। न्यायपालिका द्वारा उनकी व्याख्या और अनुप्रयोग के माध्यम से, ये लेख सामाजिक न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों को बनाए रखने में सहायक रहे हैं।

केशवानंद भारती मामला और इंद्र साहनी मामला जैसे न्यायिक निर्णयों ने भारत में सामाजिक न्याय की रूपरेखा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन ऐतिहासिक निर्णयों ने समानता, गैर-भेदभाव और सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांतों की पुष्टि की है, कमजोर समूहों के अधिकारों की सुरक्षा और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण मिसाल कायम की है। इसके अलावा, प्राचीन भारतीय साहित्य, ज्ञान और नैतिक शिक्षाओं की अपनी समृद्ध टेपेस्ट्री के साथ, सामाजिक न्याय के लिए प्रेरणा के एक कालातीत स्रोत के रूप में कार्य करता है। इन अंतर्दृष्टियों के प्रकाश में, यह स्पष्ट है कि भारत में सामाजिक न्याय केवल एक कानूनी या राजनीतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि राष्ट्र के लोकाचार में गहराई से निहित एक नैतिक अनिवार्यता है। जैसा कि हम आधुनिक समाज की जटिलताओं को नेविगेट करते हैं, सभी के लिए अधिक न्यायसंगत और न्यायसंगत भविष्य बनाने के लिए हमारे संवैधानिक सिद्धांतों, न्यायिक ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को आकर्षित करना आवश्यक है। अंत में, भारत में सामाजिक न्याय की दिशा में यात्रा एक सतत संघर्ष है जिसके लिए समाज के सभी वर्गों से सामूहिक कार्रवाई, सहानुभूति और प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। हमारे संविधान में निहित सिद्धांतों को कायम रखते हुए, हमारी

न्यायपालिका के निर्णयों का सम्मान करते हुए, और हमारे प्राचीन ज्ञान से प्रेरणा लेते हुए, हम आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अधिक समावेशी, न्यायसंगत और दयालु समाज के निर्माण की दिशा में काम कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य कालातीत ज्ञान, नैतिक सिद्धांतों और नैतिक मार्गदर्शन की पेशकश करके समाज में सामाजिक न्याय प्रदान करने में अत्यधिक महत्व रखता है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों और वेदों, उपनिषदों और भगवद गीता जैसे दार्शनिक ग्रंथों के माध्यम से, प्राचीन भारतीय साहित्य करुणा, धार्मिकता और सत्य की खोज पर मूल्यवान सबक प्रदान करता है। ये ग्रंथ जाति, पंथ या सामाजिक स्थिति की परवाह किए बिना प्रत्येक व्यक्ति की अंतर्निहित गरिमा और मूल्य पर जोर देते हैं। वे समानता, न्याय और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों की वकालत करते हैं, समाज में सद्भाव और समावेशिता को बढ़ावा देते हैं। उदाहरण के लिए, भगवद गीता कर्तव्य (धर्म) और धार्मिकता (धर्म) की अवधारणा सिखाती है, व्यक्तियों को नैतिक आचरण और सामाजिक जिम्मेदारी की ओर मार्गदर्शन करती है।

इसके अलावा, प्राचीन भारतीय साहित्य हाशिए पर रहने वाले समुदायों के संघर्षों को प्रदर्शित करता है और उनके अधिकारों और सम्मान का समर्थन करता है। एकलव्य और शबरी जैसे चरित्र विपरीत परिस्थितियों में लचीलापन और साहस का उदाहरण देते हैं, जो पीढ़ियों को अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ खड़े होने के लिए प्रेरित करते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षाओं का अध्ययन करने और उन्हें अपनाने से, समाज सामाजिक न्याय और नैतिक जीवन की गहरी समझ पैदा कर सकता है। ये कालातीत आख्यान नैतिक दिशा सूचक यंत्र के रूप में कार्य करते हैं, जो व्यक्तियों को सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति, करुणा और सम्मान की ओर मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय साहित्य एक अधिक न्यायपूर्ण, न्यायसंगत और सामंजस्यपूर्ण समाज को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ सूची

[xxxii] https://www.gov.scot/publications/using-intersectionality-understand-structural-inequality-scotland-evidence-synthesis/pages/3/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

xxxii प्लेटो, (2018, पुनर्मुद्रण), रिपब्लिक, रूपा प्रकाशन, पृष्ठ 140-141

xxxii अरस्तू, (2021, पुनर्मुद्रण), राजनीति, फ़िंगरप्रिंट क्लासिक्स, पृष्ठ 249-253

xxxii सेन, ए. (2009). न्याय का विचार. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ 203-236

[xxxii] रॉल्स, जे. (1971). न्याय का एक सिद्धांत. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ 225 & 203

[xxxii] शर्मा, एम., और गुप्ता, ए. (2021)। अंतर्विभागीयता और सामाजिक न्याय: लिंग, जाति और वर्ग की गतिशीलता को समझना। रूटलेज। पृष्ठ 124

[xxxii] प्लेटो, (2018, पुनर्मुद्रण), रिपब्लिक, रूपा प्रकाशन, पृष्ठ 140-141

[xxxii] अरस्तू, (2021, पुनर्मुद्रण), राजनीति, फ़िंगरप्रिंट क्लासिक्स, पृष्ठ 249-253

[xxxii] सेन, ए. (2009). न्याय का विचार. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ 203-229

xxxii रॉल्स, जे. (1971). न्याय का एक सिद्धांत. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 7.5

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 7.6

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 7.7

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 8.2

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 8.2

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 8.2

xxxii https://judgments.ecourts.gov.in/KBJ/?p=home/intro 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

[xxxii] https://indiankanoon.org/doc/1363234/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

[xxxii] https://www.law.cornell.edu/women-and-justice/resource/vishaka_v_state_of_rajasthan 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

[xxxii] https://indiankanoon.org/doc/168671544/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

[xxxii] https://indiankanoon.org/doc/823221/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

[xxxii] श्रीमद्भगवद गीता (4.13), पृष्ठ 453

[xxxii] https://greenmesg.org/stotras/vedas/om_sarve_bhavantu_sukhinah.php 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

[xxxii] https://greenmesg.org/stotras/vedas/om_sarvesham_swastirbhavatu.php 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया